**E-ISSN:** 2706-8927
**P-ISSN:** 2706-8919
**Impact Factor:** RJIF 5.12
IJAAS 2020; 2(1): 312-315
Received: 13-11-2019
Accepted: 27-12-2019

**सुधा कुमारी**
सहायक शिक्षिका, परियोजना बालिका उच्च वि. आनंदपुर, दरभंगा, बिहार, भारत

**Corresponding Author:**
**सुधा कुमारी**
सहायक शिक्षिका, परियोजना बालिका उच्च वि. आनंदपुर, दरभंगा, बिहार, भारत

# काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में एकल परिवारः घुटन, संत्राास का आधार

## सुधा कुमारी

**सारांश**
यद्यपि भारत में एकल परिवार का प्रचलन संयुक्त परिवार से अधिक होता जा रहा है जिसके विविध कारण हैं तथापि व्यक्तिपरक चरित्रा में वृद्धि एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति का परिणाम है न कि कारण। भारत की परंपरागत परिवार व्यवस्था में संरचनात्मक तथा कार्यात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था कई कारणों से बाधित हुई है। अंग्रेजों के आगमन से उनके साथ लाए गए नए आर्थिक संगठनोंए विचारधाराओं तथा प्रशासनिक प्रणालियों के कारण सांस्कृतिक स्वरूप में परिवर्तन अवश्यंभावी था।
पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय तथा उदारवाद के प्रसार ने संयुक्त परिवार की भावनाओं के समक्ष चुनौती पेश की। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संचार के तीव्र साधनों के चलते देश के दूरस्थ हिस्से भी एक.दूसरे के निकट आए। ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर रहने के बजाय अधिक बाजारोन्मुख होती जा रही थी तथा नगरों का उदय हो रहा था। पाश्चात्य शिक्षा नौकरशाही संगठन का परिपालन करती थी। इन परिवर्तनों ने परंपरागत संयुक्त व्यवस्था को प्रभावित किया।

**प्रस्तावना**
संयुक्त परिवार का एकल परिवार में तब्दील होना मानवता के लिए, मानव–मूल्य के लिए सर्वाधिक संघातक प्रक्रिया है, जो अभी निर्बाध रूप से जारी है। इससे नव्योपन्यासकार काशीनाथ सिंह भी चिंतित हैं। इस चिन्ता का प्रकटीकरण उन्होंने विजेत्री विक्रम सिंह से सम्पन्न वार्त्ता में किया है– ''मेरी सबसे बड़ी चिंता ये है, कि इस भूमण्डलीकरण के दौर में भौतिक विकास तो बहुत हो रहा है, मॉल बन रहे हैं, बाँध बन रहे हैं, लेकिन जो विकास मनुष्य के लिए होना चाहिए था, मनुष्य की बेहतरी के लिए होना चाहिए था, मनुष्यता के विकास के लिए होना चाहिए था, वह नहीं हो रहा है, बल्कि उल्टा हो रहा है। यही इस विकास का खराब पहलू है। हमारा पर्यावरण लगातार बिगड़ता जा रहा है। पानी की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, हवा दूषित हो रही हैं, नदियाँ प्रदूषित हो रहीं हैं, यानी भविष्य कैसा होगा? यह सोचकर हम काँप उठते हैं।''[1]
काशीनाथ जी की चिन्ता के मूल में है–मनुष्य और मनुष्य विनिर्मित परिवार, क्योंकि परिवार ही व्यक्तित्व–निर्माण का प्रथमाधार है, जबकि समाज द्वितीय आधार और यह जरूरी नहीं कि, जैसा समाज हो, वैसा ही हर परिवार भी हो। लंका में राज और समाज रावणाधारित ही था। जैसा राज वैसा समाज, लेकिन उसी समाज में विभीषण–परिवार भी था। इससे भी स्पष्ट होता है, कि समाज के अंदर रहनेवाले परिवारों के भी अपने–अपने संस्कार होते हैं। लेकिन परिवार वहीं अच्छा होता है, जो संयुक्त रहता है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं, कि जो संयुक्त परिवार का नायक होता है, वही समाज और देश का भी सच्चा और अच्छा सहायक होता है, और जो परिवार विघटन का जिम्मेदार होता है, वही समाज–विघटन का भी। वस्तुतः संयुक्त परिवार विस्तृत फुलवाड़ी है, जबकि एकल परिवार गमला।
काशीनाथ सिंह के उपन्यासों –'महुआचरित' एवं 'रेहन पर रग्घू' से एकल परिवार के घुटन और संत्राास को समझा जा सकता है। दोनों उपन्यासों में ऐसे मध्यवर्गीय संयुक्त परिवारों का चित्राण किया गया है, जिसके विघटित होने के अन्तराल में जो एकल परिवार दिखाई पड़ता है, वहाँ मानवता कराहती हुई प्रतीत होती है।
'महुआचरित' में अस्सी साल के स्वतंत्रातासेनानी का संयुक्त परिवार है। इसमें वृद्ध माता–पिता के अलावा एक बेटी और एक बेटा, लेकिन बेटे–बेटी अपने–अपने पथ के पथिक। बेटी महुआ भी अपने कैरियर बनाने की चिन्ता में और बेटा सुशांत भी, इसीलिए दोनों में से कोई भी पिता को सही पिता नहीं समझता ।
बकौल महुआ– ''पापा की ये बातें (मानवीय व्यवहार से लेकर देश– दुनिया की बातें) कभी बहुत अच्छी लगती थीं, लेकिन अब इनसे चिढ़ पैदा होती है।

सारी जिन्दगी तुम देश और दुनिया के ही बारे में सोचते रहे, कभी अपनी बेटी के बारे में भी सोचा? तुम्हें तो यह तक पता नहीं, कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उन्तीस या तीस? तुम जिन सहेलियों के बारे में पूछते हो, उनमें कितनी माँ बन चुकी, और कितनी पेट से हैं? तुम यह भी जानते हो, कि न दहेज दे सकते हो, न मैं वैसी शादी कर सकती हूँ। फिर तुम खुलकर क्यों नहीं कहते, कि बेटी! तुम्हें जो करना हैं–करो, हम साथ हैं तुम्हारे।''[2]

इस उद्धरण से भी झलकता है, कि स्वतंत्राता सेनानी मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार में एकल परिवार अपने आगमन का दस्तक दे रहा है। परिवार की एक मात्रा पुत्राी, स्वतंत्राता सेनानी की बेटी, यह भूल जाती है, कि विद्याध्ययन ब्रह्मचर्यावस्था में ही आत्मिक धरातल पर किया जा सकता है। दूसरी ओर अगर उसका विवाह चढ़ती यौवनावस्था में ही पिता द्वारा करवा दिया जाता, तब वह कब की माँ बन गयी होती, और तब सही समय पर पी–एच.डी. की थेसिस भी शायद जमा नहीं कर पाती, और तब क्या पड़ोसी के नये किराएदार के रूप में आए मनोविज्ञान के लेक्चरर साजिद को पहला संभोग–साथी बना पाती? इसे तो पिता की उदारता की कहनी चाहिए, कि उन्होंने कभी उसे पिंजड़े की मैना बनने को बाध्य नहीं किया, जैसा कि आज भी तकरीबन प्रत्येक जाति–धर्म के लोगों में, विशेषकर पिताओं में देखा जाता है। महुआ का पिता को कोसना सिद्ध करता है, कि वह पिता की उस भावना को समझ नहीं पायी, कि सभी को स्वतंत्रा देखना चाहते हैं–वह, जैसे देश को मुक्त देखना चाहते थे। बेटा भी तो अपनी मनचाही युवती से ही ब्याह रचता है, महुआ जिस्म की आग में जल रही है, इसका प्रमाण उसकी सहेली, एकान्त बहिन्पा के रूप में फँतासी प्रतिम वह छत है, जिसके बारे में वह कहती है–''छत!

**यही छत मेरे जीवन का 'टर्निंग व्वाइंट**
**यह मेरे लिए 'सरग नसेनी' थी।**
**इधर शाम ढलती, उधर मैं छत पर।**
**.....**

देखते–देखते यह छत मेरी सहेली बन गयी। कब मेरा बाल खींच रही है और गाल सहला रही है, कब मेरी बाँहें फैलाकर उनके पंख बन रही हैं .....मुझे कभी–कभी लगता है, कि मेरी बाल नॉर्मल लड़कियों जैसी नहीं रही। मैंने देह की माँगें बराबर अनसुनी कीं, उसकी जरूरतें नहीं देखीं.....।''[3]

इस उद्धरण से भी स्पष्ट होता, कि महुआ देह–जंगल में भटक रही है। इसीलिए पिता को नहीं समझ सकी, और न ही उसके पिता महाप्राण निराला की तरह कह सके–

**''धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,**
**तेरे हित कुछ भी कर न सका,**
**जाना तो अर्थागमोपाय,**
**पर रहा सदा संकुचित काय।**
**रखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर,**
**हारता रहा मैं स्वार्थ –समर,**
**सुचिते, पहनाकर चीनांशुक**
**रख सका न तुझे अतः दधिमुख।''[4]**

देश की दुर्दशा से दुखी, विचारों से सेकुलर अस्सी साल के स्वतंत्राता सेनानी महुआ के पिता अगर नारी–मर्यादा–मूलक नहीं होते, तब खास पंचायतों के रपटें और उसके फैसले पर बिफरते क्यों ? उन्होंने कभी महुआ को पारम्परिक पिताओं की तरह कभी समझाने की कोशिश नहीं की, कि स्त्राी हो, पुरुष की तरह मत उड़ो। आज भी गर्भ से ही यह अहसास कराया जाता है, कि तुम बेटी हो, बेकार गर्भ में लेटी हो, तुम्हें तो सात हाथ जमीन के नीचे लेटी रहना चाहिए, ज्योंहि होश संभालती, कि उसे सिखलाया जाता है–माँ द्वारा, दादी द्वारा..... पता नहीं किसके–किसके द्वारा, कि तुम लड़की हो, लड़कों जैसा व्यवहार मत करो। अधिकांश पिता तो पुत्राी–जन्म का मतलब ही उसका विवाह करना समझ रहे हैं और पढ़ाई–लिखाई भी तभी तक करा रहे हैं, जब तक, कि उसकी शादी नहीं हो जाती। फिर उसके आगे की पढ़ाई–लिखाई का भार उसके ससुराल वालों का समझने लगते हैं। महुआ के पिता की तरह नहीं चाहते, कि बेटी भी बेटे की तरह अपने जीवन–यापन लक्ष्य की तलाश कर लें, अपनी एक खास पहचान बनाने का पथ प्राप्त कर ले, तब जिससे इच्छा हो, सोच–समझकर अपनी गृहस्थी बसा लें, 'जिससे इच्छा' का मतलब अपनी जाति–बिरादरी और जनक–जननी के विचारालोक में। उनकी सदाशयता, उदारता आदि सद्गुणों के प्रमाण उनके पिता–माता और पुत्राी मध्य हुए वार्त्तांश से भी मिलता है– ''ऐसा है बेटा कि किताब, कॉपी, गाने–खिड़की– ये सब तो हैं ही। कभी–कभी बाहर भी निकलना चाहिए। अकेले न जाना हो, तो मम्मी को भी ले लो! और नहीं तो घर में ही ऊपर इतनी बड़ी छत है। काहे के लिए है? सिर्फ कपड़े सुखाने के लिए? समझ रही हो ना?''[5]

वह बाहर घूमने की बात समझ गयी, तभी तो बहाना बनाकर माता–पिता को उल्लू बनाकर, वह साजिद के साथ हैदराबाद तक की सैर कर आती है, और गर्भवती भी हो जाती है, यह भी नहीं सोचती, कि लेक्चरर साजिद कई बच्चों का बाप भी है और मुसलमान भी। बाद में उसी से ब्याह करती है, जिसके प्रेम को विद्यार्थी जीवन में ही ठुकरा चुकी है, लेकिन ब्याह–पूर्व उसे अपने गर्भपात कराने की बात नहीं बताती है, लेकिन हर्षुल को पता चल जाता है, और वह गर्भ में एक प्राण–पिण्ड को लिए एकल परिवार जीने को विवश–सी आगे बढ़ जाती है–थकी–थकी–सी, हारी–हारी–ही, हर्षुल की निशानी ढ़ाई माह के गर्भ को सहलाती, खुद को बहलाती–सी। ''ब्रीफकेश के बगल में बैठते हुए ड्राइवर से कहा–'' हाँ, अब चलो भैया! .....लेकिन आराम से। कोई जल्दी नहीं है।''[6] ...और यहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है। छोटी–सी कहानी, लेकिन भौतिक चकाचौंध में डूबे मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार के गर्भ में पलते एकल–परिवार की बड़ी–सी निशानी भी है। बेटे और बेटी अपने–अपने परिवार–बसाने की जुगाड़ में माता–पिता को भी जीवन–इतिहास के हाशिए से भी काट हटाया, जिसने संयुक्त परिवार बनाया, उसने भी एकल परिवार के दुख–दर्द, घुटन–संत्रास को उठाया।

आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? इसका उत्तर मनोवैज्ञानिकों 'व्यक्तित्व–विकृति' कहकर दिया है। व्यक्तित्व विकृति को कारसन एवं बुचर जैसे पाश्चात्य मनोचिकित्सकों ने चारित्रिक विकृति भी कहा है, कि यह एक ऐसी सामान्य श्रेणी है, जिसमें उन व्यक्तियों को रखा जाता है, जिनके व्यक्तित्व के शीलगुण (ज्तंपजे) एवं उनका विकास इतना अपरिपक्व (प्उउंतम) तथा विकृत (क्पेजंतजमक) होता है, कि अपने वातावरण के लगभग प्रत्येक चीज, घटनाओं एवं व्यक्ति के बारे में वे एक दोष–पूर्ण चिंतन तथा प्रत्यक्षण– (च्मतबमचजपवद) करते हैं, और जिसके कारण उनमें कुसमायोजनशीलता (डंसंकंचजपअमदमे) इतनी अधिक बढ़ जाती है, कि लोग उनसे तंग आ जाते हैं, और परिवार के सदस्य उनके व्यवहार पर जरूरत से ज्यादा चिंतित हो उठते हैं, व्यक्तित्व विकृति किसी तनावपूर्ण परिस्थिति के प्रति एक प्रतिक्रिया नहीं होती है, जैसा कि हम समायोजन विकृतियों में पाते हैं, .....और न ही वह चिन्ता के प्रति एक तरह का बचाव–परिणाम होता है, जैसा कि मानसिक विकृतियों में हम पाते हैं, बल्कि यह एक तरह का अपरिपक्व व्यक्तित्व–विकास का प्रतिफल होता है। इस तरह की व्यक्तित्व विकृतियों के लक्षण

किशोरावस्था तक स्पष्ट हो जाते हैं, जो वयस्कावस्था में भी मौजूद रहते हैं।''[7]

महुआ चरित में उसका भाई सुशांत भी व्यक्तित्व विकृति का शिकार है। इसी प्रकार 'रेहन पर रग्घू' के नायक वृद्ध प्रोफेसर रघुनाथ के दोनों पुत्रा भी इसी विकृति के मरीज प्रतीत होते हैं। 'काशी का अस्सी' में तन्नी गुरू और कन्नी गुरू दो भाइयों का व्यक्तित्व भी विकृतियों का खजाना ही लगता है। दो टूक सत्यार्थ– प्रकाश यही है, कि व्यक्तित्व विकृतियों के कारण ही संयुक्त परिवार एकल परिवार में तब्दील हो रहा है, और एकल–परिवार पाशबद्ध मानव अपने व्यक्तित्व विकृति के कारण ही दुःख–संत्रास–पीड़ा–घुटन का पर्याय बन जाता है।

काशीनाथ सिंह के उपन्यास और संस्मरणों से ऐसे कई मनोवैज्ञानिक तथ्य उभरते हैं, जिनपर अगर ध्यान केन्द्रित किया जाए, तब न व्यक्तित्व–घुटन रहेगा, और न ही संयुक्त परिवार–विघटन। संयुक्त +परिवार विघटन के मूल में व्यक्ति–घुटन ही है, और व्यक्ति–घुटन के मूल में ही है–पारिवारिक विघटन।

विशाल संयुक्त परिवार भी 'घर का जोगी जोगरा' की तरह अलग–अलग होते हैं, यह प्राकृतिक नियम है, लेकिन व्यक्तित्व–सुकृतता–सुधा–सिंचित मनोमस्तिष्क के कारण वहाँ पारिवारिक समायोजन होता है, पारिवारिक विन्यास होता है, पारिवारिक विघटन नहीं। जहाँ विघटन होता है, वहाँ हृदय भी टूटता है, अपनापन छूटता है, जहाँ पारिवारिक संगठन होता है, वहाँ अलग–थलक रहते हुए भी हृदयात्मक एकता ताउम्र कायम रहती है। ऐसा ही देखा गया है 'घर का जोगी जोगरा में'।

एकल–परिवार में असली घुटन–संत्रास का पुतला दिखता है– प्रोफेसर रघुनाथ का मित्रा ज्ञानदत्त। संयुक्त परिवार की सुधा पीते–पीते जब से एकल परिवार के जहर को पीना प्रारंभ किया, तब से मानसिक विकृतियाँ भी उसे अपने पाश में जकड़ने लगीं, और वह आत्मघात करने जैसी मानसिक स्थिति का शिकार भी हो गया। काशीनाथ जी ने विविध उपन्यासों एवं संस्मरणों के माध्यम से पारिवारिक जीवन के जिन विविध रूपों को रूपायित किया है, उनमें संयुक्त परिवार की सुगंध भी है, और एकल–परिवार का दुर्गन्ध भी।

मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया है, कि व्यक्तित्व–विकृति का शिकार यह समझ ही नही पाता है, कि उसके व्यक्तित्व में विकार आ गया है। वह अपने इस विकार को ही सही संस्कार समझ लेता है, और अपनी समस्याओं एवं कुसमायोजी पैटर्न से छुटकारा पाना नहीं चाहता है। फलस्वरूप वह अपनी ओर शायद ही कभी किसी प्रकार की चिकित्सा उपायों पर अमल करता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति द्वारा उसे चिकित्सा के लिए भेजा भी जाता है, तो वह चिकित्सक के साथ धोखाधड़ी भी करता है, या उसके साथ पूर्ण सहयोग नहीं दिखलाता है, जिसके फलस्वरूप उसकी विकृति की गंभीरता बनी की बनी रहती है।[8]

काशीनाथ–उपन्यास और संस्मरणों में ऐसे पारिवारिक जीवन के विविध रूपों के अन्तराल में अनेक व्यक्तित्व–विकृति के शिकार मिलते हैं, लेकिन कोई भी मनोचिकित्सक के पास जाते हुए नहीं दीखता है। महुआ भी 'आशा गुप्ता क्लिनिक तक गर्भपात कराने ही जाती है और हल्का होकर बाहर निकलती है। अगर वह स्वयं को व्यक्तित्व–विकृति का शिकार समझती, तब मनोचिकित्सक के पास अवश्य जाती ।

मनोवैज्ञानिकों ने जिन दस व्यक्तित्व–विकृति के प्रकारों– स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व–विकृति, स्किजोआयड व्यक्तित्व/विकृति, स्किजोटायपल व्यक्तित्व–विकृति, हिस्ट्रोओनिक–व्यक्तित्व–विकृति, आत्ममोही–व्यक्तित्व–विकृति, समाजविरोधी व्यक्तित्व– विकृति, सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व–विकृति, परिवर्जित व्यक्तित्व–विकृति, अवलंबित व्यक्तित्व–विकृति और मनोग्रसित बाध्यता व्यक्तित्व–विकृति– का वर्णन किया है, ऐसे तमाम विकृतियों के शिकार काशीनाथीय उपन्यासों एवं संस्मरणों में अनायास ही मिल जाते हैं, क्योंकि तकरीबन हर कथा–मूल में संयुक्त परिवार का विघटन और एकल परिवार का संगठन दीखता है, जिसके कारण मानवता तार–तार होती दीखती है। 'दन्तकथाओं के त्रिलोचन' एक ऐसा ही कथात्मक संस्मरण है, जिसमें एकल परिवार की पीड़ा–प्रसाद को पीते रहने के बावजूद त्रिलोचन मस्त दिखाई पड़ते हैं।

काशीनाथ जी ने उनका पूरा परिचय देते हुए लिखा है–सुलतानपुर जिले के चिरानीपट्टी गाँव के ठाकुर वासुदेव सिंह उर्फ त्रिलोचन शास्त्री..... सुना है–शास्त्री जी अपने जन्म से अठारह साल पहले लाहौर में रिक्शा चलाया करते थे..... बनारस में रहते हुए मैंने कभी उसे रिक्शे में नहीं देखा, इक्के या ताँगे पर नहीं देखा, स्कूटर या कार में नहीं देखा, देखा; तो अधिक से अधिक किसी युवा लेखक की साइकिल के डंडे पर..... ..... कहते हैं, उदय प्रताप क्षत्रिाय कॉलेज के एक छात्रावास में नया–नया मेस महाराज आया। 40 के दशक की बात है, जब वहाँ नामवर–केदार विद्यार्थी हुआ करते थे। इनमें से किसी ने त्रिलोचन को खाने पर न्यौता। त्रिलोचन ने खाना आरंभ किया। रोटियाँ आ रहीं हैं और त्रिलोचन खा रहा है– चालीस, साठ, अस्सी, सौ..... सुबह पाया गया, कि त्रिलोचन को खिलाने के बाद रात में ही मेस–महराज छात्रावास छोड़कर भाग गया। याने कि त्रिलोचन खाता था, और डटकर खाता था–खेत में काम करनेवाले किसान की तरह। ..... एक समय ऐसा भी आया, जब त्रिलोचन का बड़ा बेटा युनिवर्सिटी में प्रोफेसर, लेकिन त्रिलोचन बोरे में कोयले की जगह अपने स्वाभिमान को साईकिल की कैरियर में बाँधे' सड़क पर। 'जनवार्त्ता' जैसे लोकल और टुटपुँजिए अखबारों में तुम्हें कितनी पगार मिलती थी– त्रिलोचन? तुम्हारे कुर्ते और पाजामे में ये छेद कितने महीनों से, सालों से है त्रिलोचन? त्रिलोचन ! मैं बहुत धीमे से तुम्हारे कान में यह पूछ रहा हूँ– तुम दोपहर बाद और रात को विदा होने से पहले बाल्टी–बाल्टी भर पानी क्यों पिया करते हो त्रिलोचन? इनके बावजूद इस नगर में शायद ही कोई हो, जिससे त्रिलोचन ने कहा हो, कि –

–इन दिनों बड़ी तंगी में दिन कट रहे हैं।

–हो सके, तो कोई काम–धंधा दिलाओ।

–बीवी को होली पर साड़ी चाहिए, कोई बन्दोबस्त करो।

–बेटा मनमानी कर रहा है, मेरी नहीं सुनता।

–लेखक ने लिखा है, कि मुझे हैरत है, कि बनारस ने ऐसे व्यक्ति को जिन्दा क्यों छोड़ा? ऐसे शख्स को जो सिर्फ दूसरों की सुने, उन्हें उपाय बताए, उनके सुख–दुख में शामिल हो, और जब अपनी बारी आए, तो कविताओं में चला जाए, बातें करनी हो, तो सीनेटों से करें।''[9]

त्रिलोचन भी एकल परिवार के घुटन–पीड़ा और संत्रास के शिकार हैं, लेकिन व्यक्तित्व–विकृति का नहीं। यही वह कारण है, जो हर विपरीत परिस्थिति में भी उन्हें मस्त रखता है। वह न तो महुआ के स्वतंत्राता सेनानी पिता की तरह अपने पुत्रा से विरोध रखते हैं। और न ही ' 'अपना मोर्चा' के चतुर्थवर्गीय कर्मचारी, जो विश्वविद्यालयी महासंयुक्त परिवार के विघटन फलस्वरूप स्वयं को एकल–परिवार का समझते हुए हताशा का प्रकटीकरण करते हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है, कि व्यक्तित्व विकृति ही संयुक्त परिवार से एकल परिवार तक मनुष्य को लाता है, जहाँ त्रिलोचन की तरह सकारात्मक भाव में नहीं जीनेवाले ही पीड़ा–घुटन और संत्रास का पर्याय बन जाते हैं।

## संदर्भ सूचीः


1. 'आजकल'–सम्पादक– फरहत परवीन–प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जुलाई 2014, पृ0–44
2. 'महुआचरित' काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ0–14

3. 'महुआचरित' काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ0–16–17
4. 'राग–विराग'–सम्पादक– रामविलाश शर्मा–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ0–80
5. 'महुआचरित' काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ0–15
6. 'महुआचरित' काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ0–100
7. 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' अरूण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास, 2013, पृ0–266
8. 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' अरूण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास, 2013, पृ0–268
9. 'याद हो कि न याद हो'–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ0–41–47